



३११

२०११ मी मनि।

# महावीरचरितभाषा

अथान

भर्याहापुहपोनम श्रीरवुहीर की सरडील

सहाकति ओमवधुति के अमित संकलन मना  
का भाषा मध्य और उद्योग के अनुवाद

अनुवादकर्ता

## श्रीअवधवासीमूपउपनाम

लाया मीनागम बी, ए

प्रकाशक

नेशनल प्रेस-प्रभाग



34

॥ धर्मो रक्षति रक्षितः ॥

# महाभारत की भाषा

अर्थात्

## भयानक पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की जन्म-कथा

इस किताब में श्री कृष्ण की जन्म-कथा का अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में बतलाया गया है।

अनुवादकर्ता

# श्री अथर्वशास्त्री भूपतिनाथ

जाला सीनाराम बी. ए.

प्रकाशक

नेशनल प्रेस-प्रयाग

पृष्ठ संख्या

१९५५ ई.

[ मूल्य १० ]



प्राचीननाटकसहिताना

# महाभारतसहिताना

उपान्त

महाभारतसहिताना श्रीमद्भारत की कथाका

महाभारतसहिताना की कथाका  
का नामा मद्र और कर्ना के अनुसार

अनुवादकर्ता

श्रीमद्भारतसहिताना

ताला श्रीनारायण श्री. ए.

प्रकाशक.

नेशनल प्रेस-प्रयाग

# शाला लीलाराम, बी०ए०, रचित ग्रन्थ

मॉर प्रोसेस विद्या के माहलों का स्वतन्त्र भाषासुत्राव

१—सुख सुखी	...	...	...	(१)
२—बनबंदिता का जल	...	...	...	(२)
३—अकल में सुख	...	...	...	(३)
४—होमवेत	...	...	...	(४)
५—राजा विद्वान	...	...	...	(५)
६—राजा विवेक	...	...	...	(६)
७—धुला अकल	...	...	...	(७)
८—राजा अकली बलि	...	...	...	(८)
९—सुखी अकल	...	...	...	(९)
१०—कुमारसंभव भाषा	...	...	...	(१०)
११—नेत्रवृत्त भाषा	...	...	...	(११)
१२—अनुमति भाषा	...	...	...	(१२)
१३—सहायता-अर्थित भाषा	...	...	...	(१३)
१४—अकली-माधव भाषा	...	...	...	(१४)
१५—अकली भाषा	...	...	...	(१५)
१६—मालविकाग्निमित्र भाषा	...	...	...	(१६)
१७—सुखवृत्त भाषा	...	...	...	(१७)
१८—सवित्री	...	...	...	(१८)
१९—वर्ष राजनीति अर्थात् हिन्दोपदेश भाषा, पहिला भाग	...	...	...	(१९)
२०—वर्ष राजनीति अर्थात् हिन्दोपदेश भाषा, दूसरा भाग	...	...	...	(२०)
२१—इतर गानअर्थित भाषा	...	...	...	(२१)

मिलने का पता—

**राधनरायन लाल, बुकसेलर**

करवा, इलाहाबाद ।

मॉर प्रोसेस विद्या, मुहूर्तमंज, इलाहाबाद ।

## PREFACE TO THE FIRST EDITION

"VILLAGER", says Professor Wilson, "there exists a dramatic literature, it must be presumed by accident, to the attention of the philosopher as well as the psychologist, of the man of general literary taste as well as the professional scholar."

"Independent, however, of the drama is a drama which the Hindu Theatre possesses, upon principles which equally apply to the dramatic literature of every nation, it may advance pretensions to consideration on its own account, connected both with its peculiar merits and with the history of stage."

Hindu drama "in particular", writes Elphinstone, "which is the department with which we are best acquainted, rises to a high pitch of excellence". "To the age of these dramas must be added their undoubted literary value as repositories of much true poetry (though of an oriental type" (Monier Williams). These plays exhibit a variety not surpassed in any other stage. (Elphinstone.)

Sir William Jones published his translation of "Shakuntala" more than a century ago. He was followed by Professor Wilson with his "Specimens of Ancient Hindu Theatre in 1827". This admirable work contains translations of six dramas, viz., "The Toy Cart", "Vikramorvasi", "Fitara Charita", "Malati Madhava", "Mudra Rakshasa" and "Bhanuvaraha" and abstracts of 24 more. Monier Williams' translation of "Shakuntala" is a glorious monument of successful attempt to render Hindu ideas into English. "Mahavira Charita" has been translated into English by



... "Bhagavad Gita" and "Nagabharata" by Mr. B. P. ... Translation of "Chandragupta" and "Mahabharata" ... appeared from the pen of Professor Tawney of ...

Understanding could be done in the present ... want to reproduce these valuable productions ... dramas have yet appeared in Hindi, viz., "Shakuntal" by Raja Lakshman Singh and "Mudra Rakshas" by ... No apology is therefore needed in the publication of the present series.

The first play of this series, as I have named it in Hindi, is one of the three plays attributed to Bhavabhuti whose reputation is only second to Kalidasa. It dramatizes the history of Rama, the great hero (Mahavira), as told in the first six books of the 'Ramayan' but with some variations.

How far I have succeeded in my paraphrase I leave my readers to judge. This work was written during my stay at Benares twelve years ago and on my transfer from the place it was laid aside. A revision would have improved some of the renderings but with the present state of my leisure it is impossible. I shall, however, deem myself amply repaid for my pains if a glance over these pages gives my readers some idea of the original or actuates them with a desire to produce better and more faithful translations.

CANONICAL

SITA RAM.

22nd February 1869.

# पहिली आकृति की भूमिका

— 13 —

अथर्वपुरी सुवर्णारण्यि नामनि स्वर्णद्वारे ।  
 जगदावनि खर्यु जहाँ बहत सुधावन वारि ।  
 रघु रघो काव्य इत श्रीरघुविरत उदार ।  
 श्रीरघुपनिपदकसन महे नकी बकि अवार ॥  
 विवरघुवरदुखवरनरत समुत सीरारण ।  
 राशिनाम कवितासुवन अरत सुवर्णनाम ।  
 कान्तिदास भवभूति जे भारत के कविराय ।  
 रघो जानहुँ इत में जासु विरल जल छाव ॥  
 लखे जिनहि रघिरत गनिय जग के कावे खद्योत ।  
 जिनकी रचनाजोहू हिम जगकविता तम होत ॥  
 तिनके नाटक काव्य के नियवरखरन प्रसाद ।  
 भाषाखंडन महे रचे काशी महे अनुवाद ॥  
 शाके श्रुति शशि धृति सुखइ अथर्वपुरी करि वास ।  
 कालिदास के काव्य की भाषा करी प्रकाश ॥  
 वीरचरित उत्तरचरित रचि भाषा सुख पाय ।  
 तासु प्रकालन हेतु अब कहत विबुध सिरनाय ॥

ए नाटक भवभूति बनाई ।  
 श्रीरघुपनिजोला सब नाई ॥  
 अनुभंजन अर लीपविद्याहू ।  
 प्रभुवनगमन सनेत उद्याहू ॥  
 सूर्यलला राजस की करणी ।  
 पहिले महे कविवर सोइ वरणी ॥  
 रचि भाषा तेहि मतिअनुसारा ।  
 यह सोइ कहहुँ लीकरपहारा ॥

जाहु पाउरल ओलुकाका ।  
 सबहीर कलि कल जन कला ॥  
 यह लीर महालीर रघुवीरा ।  
 अने लीर किल कलुजरादीर ॥  
 जो प्रलुकाया विदिक जन माही ।  
 तेहि जन कहें मीर सबु बाही ॥  
 अरुन कलुनि जकी जो कपी ।  
 यहें जगि प्रलुकाय यह पपी ॥  
 समझान किल कहित जाही ।  
 छुनिरु कलुतिबाय की बाही ।  
 "नाला जगि रामप्रवतार ।  
 रामायन सब जगि सपार ॥  
 कलुमेरु हरिहरिन कोहार ।  
 भगि अनेक सुनीसत राप ॥"  
 हबिर कावरस ले जल जानहि ।  
 यहि रखता अनूप ते समहि ॥  
 खिनविमोद निज धर्महु जातो ।  
 मैं यहि बिधि हरिकथा वखानो ॥  
 पहि नहि सकत संसकृत जाई ।  
 कहैं तु अन्धअमियरस सोई ॥  
 कै जो मोह बस रहत भुलाने ।  
 पहें देखि यह अन्ध पुराने ॥  
 समुनें सुनें रामगुनधामा ।  
 निजहि जानिहो पूरनकामा ॥

कानपुर  
 फाल्गुन शिवरात्रि  
 सं० १९५४

श्रीधरधवासी सांसाराम ॥

## नाटक के पात्र

मर्यादा पुरुषोत्तम और नाटक के नायक ।  
अयोध्या के महाराज और नायक के पिता  
मिथिला के महाराज  
साङ्गाल्य के महाराज  
कैकय के महाराज  
नायक के हीरे भाई

“ “ “

“ “ “

दशरथ के पुरोहित  
नायक के विद्यागुरु  
जनक के पुरोहित  
प्रसिद्ध ब्राह्मण और  
विश्वामित्र का बेटा  
दशरथ का मंत्री  
देवताओं के राजा  
गंधर्वों के राजा  
बन्दरों का राजा  
बालि का भाई  
बालि का लड़का  
बन्दरों के सेनापति  
एक बन्दर

३

दो गिह  
लंका का राजा  
रावण का भाई  
रावण का मंत्री  
रावण का सेनापति

सधमाय	एक राक्षस
इतु	एक देवता
मालानि	इन्द्र का सारथी
मृत	कुशध्वज का सारथी
एक तपस्वी	
एक कंचुकी	
एक क्लिष्टर	

स्त्री

सोता	जनक की पुत्री और नाटक की नायिका
उर्मिला	नायिका की छोटी बहिन
कौशल्या	नायिका की माता
कैकेयी	भरत की माता
सुमित्रा	लक्ष्मण की माता
अरुन्धती	वसिष्ठ की स्त्री
श्रमणा	एक सिद्ध शखरी
लंका, अलका	दो नगरदेवियाँ
मन्दोदरी	रावण की रानी
शूर्पणखा	रावण की बहिन
ताड़का	एक राक्षसी
त्रिजटा	एक राक्षसी

सिपाही, चैरे, प्रतीहारी, सखियाँ, किलरी, इत्यादि



श्रीमहावीरचरितनाटक

# श्रीमहावीरचरितनाटक

प्रस्तावना

[ २५ ] — राजनिन्दर का मुक्त अमर

( नाट्य )

कम विभाग के जो रहित स्वस्थदेव जगदीश :  
नित्य ज्योति लौकिक प्रभु ताहि नवाह्य संस ॥

( नाट्य के पीछे सूत्रधार आता है )

सूत्र — आज मुझे आज्ञा मिली है कि ऐसा नाटक खेला,  
स्वंगम पुरुष महान को जहाँ रहे अनि घोर ।  
जाने रहे प्रलाइयुत अर्थ समेत कठोर ॥  
रहे अलौकिकपात्र में जहाँ होकर एक ।  
भिन्न भिन्न से लखिपरै प्रति आध्यात्मिक ॥

तो इसका आभिप्राय यह है कि महावीरचरितनाटक खेलना  
चाहिये, जिसको

ऐसे कवि रचना करी रहे जासु बस वानि ।

कथा भातुकुलचन्द्रको जग मंगलकी खानि ॥

तो मैं हाथ जोड़ के निवेदन करता हूँ कि दक्षिण देश में पद्म-  
पुर नाम नगर था जहाँ तैत्तिरीयशाखा के ब्रह्मभवन करनेवाले,  
चरणगुरु, पंक्तिपावन, सौमयज्ञ करनेवाले पंचाग्नि, काश्यपगोत्र  
के, वेदपाठी सुप्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे । उन में से वाजपेयीजी

काव श्रीकाल

यात्रा का भिन्न है सो मुरु इत्यादि मुरु

## शाचीन नाटक मणिमाला

ए शब्दों शोड़ी में महाकवि भृगुगोपाल थे। उनके पौत्र और  
 भृगुगोपाल की नकल और जासूकरादेवी के पुत्र भवभूति नाम  
 के हैं श्रीकंठ की रचनी मिली थी,

भृगुगोपाल जिनके लखिल परब्रह्मंल गुनधाम ।

एकनामगुन जासु गुरु योगि ज्ञाननिधि मान ॥

क्यों नै—शिशुपलजी कनून जिन नाला ।

साहस तेज प्रताप प्रकाला ॥

बह लैर रघुपतिचरित सुहावा ।

नाटक नहै अति रम्य बनाव ॥

इस अपूर्व ग्रन्थ का श्रीजयधवाजीभूषणनाम लाला सीताराम  
 ने अष्टादशति लखत भाषा में अनुवाद किया है, उसे आप लोग  
 का हौं हतार्थ करें; भवभूतिजी ने कहा भी था,

श्री पावन रघुपतिगुनगाथा ।

रच्यो आदि कविवर मुनिनाथा ॥

नासु अक्त मौरिहु तहै बानी ।

सुनै मुद्रितमन पंडित ज्ञानी ॥

( नट आता है )

नट—सभके लोग तो प्रसन्न हैं; पर प्रबन्ध कभी देखा तो है  
 । इस से यह जानना चाहते ह कि कथा का आरंभ कहाँसे है ।

सूत्र—महाराज कौशिक जो यज्ञकरना चाहते हैं तो वसिष्ठ जो  
 राजप्रात महाराज इशरथजी के घर से अभी लौटे आते हैं और  
 दिव्य अस्त्र करि दान नासु वीरता जगावन ।

जग मंगल के काज सोय संग व्याह करावन ॥

दसमुखवंश विधांसि करै जग पूरनकामा ।

अनुज सहित खी रामचन्द्र लाये निज धामा ॥

नेवत्यो मिथिलापति मुनिराई ।

करत यज्ञ पठयो तिन भाई ॥

महाराज और राजा

नाम कुलदेवता का ही- पाठ

द्विज उद्विग्न शरीर चित्त तट

(शरीर में हीरक जड़ है)

## पतिव्रता अथ

पतिव्रता कथन—सिद्धाश्रम के राम एक जङ्गल

रथपर चढ़े हुये श्री कन्या समेत राजा और मृत प्राण हैं ;

राजा—बेटी सीता व्रतिनी आज तुमको बाहिर कि महासुति  
विश्वामित्रजी की वही अहा से प्रयाग करो।

श्रीतो कन्या—बहुत अच्छा वादा जी।

राजा—यह ऐसे वैसे रूपि नहीं है। यह तो

यज्ञसिद्धि काथो मनहुँ पक्षम येव अनुभूय।

तीर्थ जग विचरत फिरत धर्म धरै जटु रथ ॥

सूत—महाराज सांकाश्यनाथजी, आपसे बहुत डीक कहा।

विश्वामित्रजी से कहकर तेजधारी कौन होगा। विश्वकु की आकाश  
में रोकना, शुभाशोक के प्राण बचा लेना, रथना को निश्चल करना  
बड़े २ अक्षरज के काम इन्हीं इतिहासों में लिखे हैं।

प्रगट कर्येत् जिन वेद् तेज के परमनिधाना।

श्रीन्हो जाहि विरंचि अचल परमारथज्ञाना ॥

सो विद्यानिधिसंग करत तुम कुलव्यवहारा।

रहि गृहस्थ, को धन्य आप सम यहि संसारा ?

राजा—वाह सूत, वाह, बहुत डीक कहते हैं। यही महर्षि  
लोग हैं जिनके द्वारा वेद प्रगट हुए हैं। इनके वर्णन ही से  
कल्याण होता है।

एक बारह भेंट तैं कुं सफल भवान।

खित धिराय दोर लोक में रहै तासु फल्यान ॥



हैं अतः मैंने अपने लुप्त जन्मिit अन्न देता ।

सिद्धाश्रम—हेतु श्रीहृदय निम्न जगत् बड़ा है हेतु ॥

राम—अब राजा श्रीसिद्धाश्रम के किनारे सिद्धाश्रम नाम महावि  
की लुप्त देव रक्षक हैं, वारों और हरे हरे भाव लगे हैं । वह  
सिद्धाश्रम महाशय विधासिद्धाश्रम को जो लड़के और साथ सिद्धाश्रम से  
मिलने को आरंभ है ।

राम—तो अब हम लोग उत्तर कर चलें । ( लड़कियों के साथ  
उत्तरवा है । तुम, सिद्धाश्रमों से कह दो कि आश्रम से ब आये ।

राम—हो आशा । ( तुम एक ओर से रथ लेकर बाहर जाता  
है लुप्तों को से कौनों कथा सभ्य राजा बाहर जाते हैं )

[ दूसरा खण्ड — सिद्धाश्रम ]

( विश्वाश्रम राजा और लज्जित आते हैं )

विश्वाश्रम—( आपही आप )

शुभकाज राजकुमार हित करि अस्त्रमंत्र सिद्धाश्रम ।

वैश्वि रघुकुलबन्धु ब्राह्म सुधीस पर उहराश्रम ॥

करजाहवै जग ह्येस हिन शुभ चरित श्री रघुवीर सौं ।

परिश्रम जखि सुख कहत चित अतिश्रम कारज भीर सौं ॥

राजपति जनकजी को हमने कहला भेजा था कि आप आप ही  
यज्ञ कर रहे हैं, तभी आश्रमके अनुसार आपको न्योता दिया  
जाता है, सो आप सोना और ऊर्मिला को कुशध्वज के साथ भेज  
दीजिये । उसकी भी प्रति ऐसी है कि उसने वैसाही किया ।

श्रीगणेश—महाशयजी यह कौन है जिससे मिलने को  
आप भी आगे बढ़ रहे हैं ।

विश्वाश्रम—तुमने सुना होगा कि निम्न कुल के राजा विश्व  
देश में राज करते हैं ।

राजत तिनके बंस महीं अब सीरध्वज भूप ।

याज्ञवल्क्य सिद्धयो जिनहिं पूरन येव अनूप ॥

दीनों कुमार—तो हाँ वही जिसके कुशल में महाशय का अत्युत्सुकता जाता है।

विश्वा०—हाँ हाँ

दीनों कुमार—( जोर-जोर से ) और यह जो अत्युत्सुकता है कि एक कदम ऐसी है जो माँके पैर से नहीं छूँगी।

विश्वा०—( तुल्य-तुल्य से ) हाँ हाँ हाँ हाँ और

करत यह कि मोहिं अल-मुत्तम मरुतों के लिये भेज।

अत्युत्सुकता अत्युत्सुकता ही रहने लगे हैं।

यह अल-मुत्तम राजा है, इनके माँके विषय से रहना।

दीनों कुमार—बहुत अच्छा।

( दीनों कन्या समेत राजा कुशल-समेत आते हैं )

राजा—( दीनों को देखकर )

आरे तैल कुलीन कौन जानि इनमहि परै।

जहै अल-मुत्तम ए कश्चिय दालक दौड़ ॥

जोशो है अत्युत्सुकता वानके मुँह दौड़ दिखि रोक कसे है तुमीरा।

जोशो है अत्युत्सुकता सुग की अति पावन अत्युत्सुकता शरीरा।

मूँहकी छोर कसे कश्चिय तैल वधि रोकके रंग की वीरा ॥

अत्युत्सुकता अत्युत्सुकता है हाथ में पीपल-दाल गहरे अत्युत्सुकता वीरा ॥

दीनों कन्या—ए कुमार तो बड़े सुन्दर है।

राजा—( आगे बढ़के ; महात्माजी प्रणाम ।

विश्वा०—भैया बड़े आनन्द की बात है कि तुम कुशल-समेत आगये। कहो तो,

करत यह निजवंश-गुरु शतानन्द के साथ।

हैं निर्विक्रम कुशल चाहत के मिथिला-पुरनाथ ॥

राजा—तपस्वी पुरोहित समेत भाई को कुशल में क्या सन्देश है।

जिसके भला बाहनेवाले आप ऐसे सिद्ध महात्मा हैं।

दीनों कन्या—महात्मा हम तुम्हारे प्रणाम करती हैं

मार्कण्डेय पुराण अध्यायः

राजा—यद्युक्तिं तदा तत्र कथं विमर्शयामि तत्र श्रद्धे ।

तत्रोक्तिं तत्र, सर्वेषां सुखं तत्रैव कीर्तयते ॥

विश्वामित्रः—कथं तत्र है ।

कथं तत्र—( कथं तत्र कथं तत्र ) इति प्रश्नस्तत्र है कि कुमारी गले लगती है ।

राजा—( जान ही क्या )

यद्युक्तिं तत्र जगतीं पितृ श्रुतिविधिं भूमः

सैव हीतं मेव हिंसे विरहितं अस्मिन् कथं ॥

राजा—महाशय्ये,

ब्रह्मचारिके कथं तत्रोक्तिं शीघ्रं तत्र कुमारी :

तत्र परकृतं सर्वेषां सुखं हीनं प्रथमतः ॥

विश्वामित्रः—महाराज दशरथ के लड़के राम और लक्ष्मण हैं ।

श्रीर्षो कुमारी—( श्रीर्षो उक्तिं ) प्रथमतः, महाराज ।

राजा—बड़े आनन्द की बात है कि महाराज दशरथ के लड़के हमसे श्रेष्ठ लिये ( गले लगाके )

कैसे अपने और कुल ऐसे हनसुखकन्द ।

कीर्तिविधि ही तौ भये कीर्तुममति अह वन्द ॥

हमने यह पहले ही सुना था ।

श्रुत्यर्थं तत्र विधिं अनुकथा ।

कीर्तुं यह तत्र कोसलभूषण ॥

तत्रे पुण्यमूरति सुत वारी ।

अनुत्त प्रसाप तत्र वलधारी ॥

तो अब हम इतनीही असीस दे लकते हैं कि आपके आशीर्वाद से इनके सब मनोरथ पूरे हों । रघुकुल के लड़कों की उन्नति तो सिद्ध ही है ।

उपदेश करत वलिष्ठमुनि जिन नृपत श्रुतिविधि कर्म में ।

जिन सरित्त कोउ जग माहिं नृप नहिं प्रजापालन धर्म में ॥

आहिसंयुत मनुष्यं माई तिम कन विम सुत कथं ।  
 महाभारत तिम कर जगत्, ह्यम सुत जगत् योः शीतोः कथं ।  
 विभवा—जगत्प्राप्तं तस्य तद्वि करत पुत्रं तिम सुतं ।  
 तिमको अस्तुति करतको सुतं तिम सुतं ।

माई लक्ष्मणको योति यह है कि विभवा करके तिम सुतको  
 करते हैं योः आया ह्यम विभवाको लक्ष्मणको सुतं योः ।  
 ( सत्र अत्रकत्तं तिम सुतं )

( योः शीतोः कथं )

जयः जयः श्रीराजवाह्य को को जयः जयः शीतोः कथं ।  
 ( सत्र अत्रकत्तं तिम सुतं )

विभवा—इह जगत्तस्य हे पुत्रं शीतोः कथं ।  
 इन्हीके यजमानत्तं ह्यम योः इत पर इन्ही का शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।

राजा—क्या सर्वप्रसंगी लक्ष्मणको का प्रभाव आती योः शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।  
 शीतोः कथं योः शीतोः कथं योः शीतोः कथं ।

राजा—शुक्लस्यसि बलतेऽपुनीताः ।  
 येने अवधि सु रामहिं लीनाः ।  
 धनुर्मज्जन माई बल अधिकारः ।  
 करते नहिं जो बरगुन माई ॥

( एक तपसी आता है )

तपसी—रावण का पुरोहित सर्वभाष नाम एक बूढ़ा राजस  
 आया है। तो राजकाज से आप से मिलना चाहता है।

श्रीमं कथा—मरी राजस !

सौतेले बहन—सौतेले बहन की बहन है।  
 राजा और विद्वान—सौतेले बहन का बहन (सपत्नी) बहन  
 बहन है।

(राजसूय आता है।)

राजसूय—साम्राज्य का समुदायक नाम।

वर्ज्य—वर्ज्य व पुत्रि लोह आता ॥

मांगव हेतु सुता सुनखानी।

दरबारी मोहि मिथिलारजधानी ॥

जो प्रजा है जो राजा को यज्ञ करता हुआ पाया, उसके कहने  
 से अब सिद्धांतिक और कुशल के पास आया है। (इधर उधर  
 चलना है)।

राज और ब्रह्मण्य—(सीता और अर्मिला को और देख कर  
 ब्रह्मण्य और आपही आय) यह कौन है जो अमृतकी सलाई  
 की लानि बर्तने को कर रहे हैं।

सीता और अर्मिला—(वही प्रकार से उन दोनों की और अलग  
 ब्रह्मण्य) यह क्या है जो इसे देख सुने इतना सुख मिलता है।

राजसूय—(आगे बढ़कर देख के) अरे यही सीता है। यह  
 निःसन्देह महाराज की रानी होनेके योग्य है। (आगे बढ़कर)  
 आप ही प्रणाम है, राजा कुशल से है।

विश्वाम और राजा—माहय।

आकी आजा तिर भरत खसत मुकुट तिर नाय।

सुरपति है, मोह कुशल सन के लोकापुराय ?

राजसूय—खामी कुशल से है। महाराजने यह सनेसा भेजा है।  
 'यज्ञकी भूमि में पाइ के जगम अहं तथा एक भूप तुम्हारी।  
 इन्द्रह पास जो रख रहे सो मिलै हम कौं यदि चाह हमारी।  
 सो हम जायत आपहि मांगव भूयनकी जग रीति विद्यारी।  
 कीजिए वस्तु पुनस्त्यकेधंसके कीरति जामु सदा उद्योगारी' ॥

सीता—हाथ हाथ टाककर संभली करती है ।

अर्जुन—हाथ क्या करती कहते हैं ?

( हाथ धरि निःशक्ति हो जाती है )

अश्वमेध—जहाँ हाथों को हाथों काटकर अश्वमेध के नाम से संभली कहते हैं ।

राम—अश्वमेध संभली विषय मैंने कहा है हर नहीं सोच ।  
निःशक्ति हो जितनी ही न कर जितनी ही न हो ।

अश्वमेध—आर्यो बड़े ही सुखन ही जा जयस के धर्म निराकार  
को भी इतनी उदाहरण करत है ।

सुरतेज जित संभली को ही अश्वमेध विगारि ।

मालुबलवैगी अश्वमेध अश्वमेध ही माहि ॥

राम—ठीक है, सुख होने से यह इतने के योग है कि हम लोग  
उसे मारें । पर अश्वमेध, अश्वमेध, अश्वमेध ही ही साधारण  
रत मनुष्य की भांति नहीं मानना चाहिए ।

अश्वमेध—जिस से वीरोंका आहार अश्व कर दिया उसमें  
वीरता कहते हैं ।

राम—अश्वमेध ही जान न कहो ।

है वीर सुख कुकीन जो जित अश्वमेध पर ले करें ।

अश्वमेध निन्दये जित कश्चुं, अश्वमेध एक अश्वमेध गुन लखि परै ॥

जित खेल मे जनु जीति लीन्ही कर्मवीर्यकुमार के ।

तो राम तजि रावन अरिस कहु वीर यहि संसार को ? ॥

रावण—अश्वमेध क्या सोचते हो ?

जहाँ लगत वज्रप्रहार दाहम बाण अश्वमेध लखि परत है ।

जहाँ तारि नन्दनफूल माल बनाइ सुरगन धरत हैं ॥

जहाँ देवपतिमातंगदन्तन बाँध जनु व्यर्थहि भई ।

अश्वमेध वीरवर पर महिसुता श्रिय सरिम नित भय सोहई ॥

( परदे के पीछे हल्ला होता है )

अज्ञान का एक परिणाम :

राजा—सहाय्या की जिस शर्तियों को आपने यह में स्वीकार किया था मैं नहीं मान कर ही उसे बिक्री कर रहे हैं।

( सब यह कहते होते हैं )

सचिव—अरे यह क्यों है ?

अज्ञानी को तब उपवास पित्तोंके हाइन ताहि बजावति है।

भूपर घोर से सोरन सीं सीं बजावति भूँजि उदावति है

भुवन जातिन ये कहुँ और सीं रक्त श्रीं हाक लगावति है

और भयंकर देह अरे यह क्यों श्रीं काल सीं प्रावति है

विश्वा०—यह लुकेततनया लखिय सुन्दारुर की जोइ।

माय तब भारीककी नाम ताड़का होइ ॥

कीनो कन्या—बाबा इसे देख बड़ा डर लगता है।

राजा—डरो न डरो।

विश्वा०—( रामचन्द्र की दुइही छुकर ) भैया इसे मार दो।

सीता—हाय हाय यही इस काम को थे।

राम—गुरुजी यह खी हैं।

हर्मि०—सुना तुमने।

सीता—( विरमय और अनुराग से ) यह कुछ और सोच रहे हैं

राजा—बाह बाह क्यों न हो इन्द्राकुवशी हो।

राक्षस—अरे इशरथ का लड़का रामचन्द्र यही है।

त्रिपुल ताड़का रूप लखि जाहि तेकु भय नाहिं।

मारन महुँ तेहि मारि लखि कहुँ सकुलत मन प्राहिं ॥

विश्वा०—भैया जल्दी करो देखो आगे कितने आह्वान मारे गये हैं

राम—तो आप जानिए।

श्रीपलेश दिन नित्य रहि भये जो वेद समान।

पुण्य पापके विषय यहुँ आपहि रहैं प्रमान ॥ ( बाहर जाता है )

सीता—हाय इनके ऊपर तो वह प्रलयके बवंडल की नाईं  
ये आ रही हैं।

राजा—( अनुप उठा कर ) श्री कायिक लड़ी रह ;

शर्मि—श्री अन्न तो बाबा उतरके लगे

बन्धुपण—( मुसकाले ) शिरिरे सब अपर लीर ;

नयीं लखी हिम डेहन नीर ;

पर्यो डारने ही बिकल सरार ;

मधुवन सन जवधार लमावा ;

हारन लखिर लके लीर जाम ;

लौकी कन्या—बहा अबरक है । मधुन अरु, हुआ ।

राजा—बाह बाह राजकुमार, कन्या कहा हाथ मारा है ।

राजस—हाथ बाहका : हाथ यह क्या हुआ, लौका शूरी मिल  
उतराई ।

यह अपमान मधुन सन पाई ;

घरी हाथ राजस मधुतार ।

जिन सुबन्धुकर नास निहारा ;

हाथ न अरु बल जनत हमारा ॥

विश्वा०—यही तो श्रीगणेश हुआ है ।

राजस—बड़ी हमारी बातका क्या उतर दिते हो ?

विश्वा०—इस बात में

शौरध्वजहि प्रमान कुलधुन लीर भाव है ।

कुलके पुन्यप्रधान कन्या के पितु भूप लो ॥

राजस—शौर यह कहते हैं कुशध्वज जाने ।

विश्वा०—( आगही आय ) दिव्य अस्त्र देवे का अवसर यही  
है । सुहृद भी अच्छा है । ( प्रकाश ) भाई कुशध्वज हमने महात्मा  
कृपाश्याजी की बड़ी सेवा की; तब उन्होंने मे पैसे दिव्य अस्त्र दिये  
जो मन्त्र से चलते हैं और जिनके मारने से सेना डेरुध ही जाती  
है । तो इस समय हम सेवा रामचन्द्रजी की लीयते हैं ।

वरप सहस्रन तप जियो आध्यात्मिक इन हेत ।

तप देखी ए अस्त्र अरु निज तप वेज समेत ॥



## महाभारत-संस्कृत-संग्रह

रघुकुल पर उड़ी हुआ हुई ।

—अरे यह ईश्वरता क्यों उड़ुकी मजा रहे है क्या ।

—क्या देवता भी मजा के विरुद्ध बात ही कहकर

—ये शब्द प्रजा है ।

कौन कहते जहु शिला हैरके रंग सब पौते ।

इ अकाल जहु सौंन काल कीमत नम जीती ।

सखत निजपर विजुद्धता शरकन नमसारा ।

शयो चारिहुँ और कज्ज कर तेज चरारा ॥

मनहुँ भातुकी जोति ब्याये ।

जरत किरन अहुँडिसि पैजाये ॥

अबल तेज परनाय प्रकाशन ।

निरखनसति दूरत की नासत ॥

कन्या—चारों ओर विजलीली चमक रही हैं, भा  
कालो पड़ते हैं ।

—दिव्यास्त्रों का तेज भी कैसा प्रचण्ड होता है,

वण और इन्द्र की लड़ाई याद आती है ।

जबै इन्द्र भरि शक्ति हन्यो निज बज्र प्रचण्डा ।

राक्षसपति उर लागत भये ताके सतखण्डा ॥

ऐसेहि तबै करोरि विजुहु जहु नम महुँ काई ।

मिलत नाथकी हांसि रौषज्जाना की नाई ॥

०—भैया रामचन्द्र इनको नमस्कार करके विस्मयन

काल अग्नि अरु वायु वरुन ब्रह्मा अरु धनपति ।

रुद्र इन्द्र प्राचीनवर्हि धारे प्रभाव अति ॥

मन्त्र सहित ए अस्त्र घोर तपबल की नाई ।

एकहु इत महुँ सकै अगत सब नासि, बघाई ॥



दिये हुए लकड़ों पर बाप की लेनी कुरा है। इन लकड़ों को तो बाप ही कुरा = किया जो ऐसा बापराह न दिया।

शिवदास—क्या अब ली बापको विप्रदास नहीं है।

राजा—ऐं देता अब कहता है।

शिवदास—तो अब,

दुमिरान ही आते निकल शिवदासक खन जाय।

राजबन्धुके लौंहे लो बाप प्रगट अब होय ॥

राजा—बहुत प्रकृष्ट। ( ध्यान करना है )

राजबन्धु—( आपही बाप ) इन दोनों के कुरा और विचार।

शिवदास—अबने कुराअबन कुरा तक विचार परसे।

राजा—हमने तो कहा भारी जानै।

राजबन्धु—इसका उकार दिया। यह कहते हैं कि कुशध्वज जानै।

राजा—सोक है।

( दरवाजे के पीछे हस्ता होता है )

लकड़ लकड़ खन जनु यमी शंकरतेज प्रदीत।

राजबन्धुके जाँह अब बाप प्रगट लो होत ॥

सीता—( लुँह फेर के ) अब मुझे बड़ा डर लगता है।

शिवदास—( राजा से )

ज्यों परबत योही धरन कोपि नाग हठ बाप।

ल्यों निज हाथ लगाइ सोइ ॥

उर्मिला—अपदान कर देसा ही हो।

राजा—  
वैधत,

उर्मिला—( अति प्रसन्न और लज्जित सीता के गले लगकर )  
बधाई है।

राजा—( आश्चर्य से )  
दूरत बाप ॥

राजबन्धु—अरे इस पापी राजबन्धुका प्रभाव तो सब से बड़ा है।

लक्ष्मण—

ज्यों रविवसविभूपन राम मछो निज हाथ ल्यों शमुकोदडा

आकाशमीमांसा की लक्ष्मी देवता का नाम है।  
यह देवता का नाम है।  
यह देवता का नाम है।

राजा—

आज मैंने बहुत कुछ किया।  
मैंने जो भी कर सका कर लिया।  
जो भी कर सका कर लिया।  
जो भी कर सका कर लिया।

(संगीतपूर्ण शब्दों में)

यह एक बड़ा बड़ा काम है। मैंने जो भी कर सका कर लिया है।  
यह एक बड़ा बड़ा काम है।

राजा—मैंने जो भी कर सका कर लिया है।

मैंने जो भी कर सका कर लिया है।

कन्या—(आपकी आज की) शक्ति का उपयोग करने के लिए।

राजा—(आपकी आज की) शक्ति का उपयोग करने के लिए।

विश्वास—हम सब एक साथ हैं। हम सब एक साथ हैं।  
यह एक बड़ा बड़ा काम है।

राजा—

विश्वास—हम सब एक साथ हैं। हम सब एक साथ हैं।  
यह एक बड़ा बड़ा काम है।

राजा—(आपकी आज की) शक्ति का उपयोग करने के लिए।  
मैंने जो भी कर सका कर लिया है।

राजा—हम में क्या विचार करना है। हम तो आधीन हैं।

विश्वास—किसके।

राजा—एक ही आप ही के।

विश्वास—श्रीर किसके।

राजा—भाई श्रीरध्वज और शिवानन्द हैं।

२७ नवम्बर १९५७, क.

विश्वा०—रामाकण्ड और खीरबख्त को और ले चल ही है।

राजा—तब तो आप जानते ही हैं।

दोनों सुहागर गहनें तासु तिरि कुल संभ्रं प्ररूप ।

कीड और लन भाव अहैं तिरि कस्यक कस्यक ॥

विश्वा०—सदा सुहागोक्त ।

( सुहागोक्त जाता है )

विश्वा०—सैया सुहागोक्त कस्योपला जाओ और यहाँ मन्दिहमी  
बनारा यह मरीखा कही : बसने

कुनः शरि तिरि तिरि यह अहैं कौमलप्रतिपुन शरि ।

दोनों विशेषे कीड संभ्रं की मन्दिहमी यहवे शरि ॥

ये अग्य लख सुबियों की न्योना देकर महाराज दशरथ के  
= जलमपुर आइए । और जल जलारा और जनक को का यह  
अ हो जयमा नय गोदान करके कुमारों का क्याह होगा ।

( सुहागोक्त आहर जाता है )

दोनों कुमार—( आपही आप ) यह और ही अख्की बात है।

कन्या—( दोनों ) बहुत अच्छे बात है कि खारों बहिर्ने एक  
बर पड़ीं ।

राजस—तुमते ही श्री तुमों हमारी बात । तुमने यह लडकी  
को दे ती दी ।

पौलस्त्य कुलभूपण दशासन सुता मांगन जानिके ।

तुम कीन्ह आकर तासु तिरि संबंध अनुचित मानिके ॥

ती और कीड विधि अदसि अब यह सीय लंका जाइहैं ।

सुर सरिस ननु तुम लखन बन्दी करन औसर आइहैं ॥

( परदे के पीछे लौट जाता है । )

राजा—ए कौन हैं जो भीड़ के साथ दौड़ रहे हैं।

विश्वा०—पुत्रसुन्द उपसुन्द के ए सुबाह मारीब ।

राजन के अनुघर दोऊ दलविनाशक नीब ॥



अपने ही विचारों से सब लोग अलग-अलग हो गये।  
 जो लोग अपने विचारों से अलग हो गये वे सब  
 दुःखी बन गये। वे सब दुःखी बन गये।  
 प्रत्येक दुःखी बन गये। वे सब दुःखी बन गये।

क्योंकि

किसी को भी बचाने का सुझाव नहीं दिया गया।  
 जो लोग अपने विचारों से अलग हो गये वे सब  
 दुःखी बन गये। वे सब दुःखी बन गये।  
 प्रत्येक दुःखी बन गये। वे सब दुःखी बन गये।

अरे क्या सुझाव था ?

( सुझाव का आशय है )

शूर्पः—जाना को जय हो ।

मातयः—आओ बेटी देखो । फही राजा के यहाँ से क्या मिली है ?

शूर्पः—सीता का आहूत हो गया और महर्षि अगस्त्य ने वन के पास संगम की संत में जाकर अनुबध्ना है ।

मातयः—जो जो बड़े साधुओं के दरिबार में जाते हैं महर्षि लोग राखी जा रहे हैं ( सीताके )

विप्रश्नुग्रह सब हित सब से प्रयत्न हथियार ।  
 ब्रह्मतेज सह नम्रबल हीन अमेव अपार ।

शूर्पः—मानुष ही तो हैं तो कौन विरता हैं ।

मातयः—बेटी ऐसी बात न कहो ।

तो ऊपजी नरगेह यद्यपि तासु अद्भुत रूप हैं ।  
 तो मनुज किमि सुरवृन्द गावत जासु सुजल अनूप  
 सुर मुनिन सब लहि शक्ति अद्भुत वस्तु साधारन ल  
 वरदानसमय विरति ह र हम मन कष्टो ॥

और

अपने लक्ष्मी देकर, जो नया जन्म लेना चाहता है

अपने लक्ष्मी देकर नही, जो कति रात्रि शिवराम ॥

मूर्ति:—और क्या, जब तक रात्रि को देकर कि लक्ष्मी: मे  
अपने लक्ष्मी देकर नही, जो नया जन्म लेना कि दे  
तो क्या दे दे

रात्रि:—जो कि लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना चाहता है

जिसे देकर लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना है

करि तप धीर शिवराम देकर जो पद दे दे दे

क्यों मने नही मना कि लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना है

यह भी हो सकता है,

जान मना कि लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना है

जब रात्रि को देकर नया जन्म लेना है

पर की लक्ष्मी देकर लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना है

मही लक्ष्मी देकर नया जन्म लेना है

प्रतीहार आता है ।

प्रती:—जिसे आपने लक्ष्मी देकर परशुराम जी के पास भेजा  
था वह यह ताड़पत्र लाया है ।

( पत्र रखकर बाहर जाता है )

माल्य०—( उठाकर पढ़ता है )

"स्वस्ति लंकाराज्यायाय श्री माल्यवान को ली: परशुराम  
ने महेन्द्र द्वीप से "

शूर्प०—अरे यह तो शूर्प की नाई लिखते है ।

माल्य०—( पढ़ता है ) "महाराज:धिराज लंकेश्वर को अभि-  
नन्दन पूर्वक । आने विहित हो कि हमने दण्डकारण्यवासी तप-  
स्त्रियों को अभय किया है । जो हमने सुना है कि विराध दण्ड  
कार्द राक्षस वहाँ फिरते हैं । उनके मना करके हमारा हित और  
महादेव की प्रीति स्थिर राखप



विश्वामित्रियर के लिये मर करवाने प्रयाग ।

मार्गों को मरे कलि है कुरुरति निज उन्कार ॥ ३३ ॥

शूर्य०—इस को मरने मरे के साथ लिखी हुई है ।

मातव्य०—इस में कहते की कौरव बात है परशुराम की है व

अप जीव बिना जीवें बस अनिश्चित निज मरें प्रारिक्त ।

संभ्रम है सोर यह निरवृह ही साक्षि विचारिजे ॥

निर्दोषि सब कसु अप्र सस करि भाव सो हस सन रहे ।

मर कसुं काज विचारि सोर है विदुर ही हस सन कहे ॥

( सोचना है )

मातव्य०—हेतु ।

मार्गों न शंकरशिष्य है सो निज गुणजलुभंग ।

अप्र हमारहै है कुरुर जी जूझी दोष संग ॥

शोक है । इस में तो कौरव जीने हमारा भजा हो है । जो कृत्रियों का नाश करनेवाला जीते तो बिना उसे मारे उसका क्रोध क्यों शान्त होना । वस राम मारा गया और हमारा काम सिद्ध हो गया । जो राजकुमार जीते तो वह ब्रह्मर्षि को कैसे मारेगा । परशुराम की मुक्ति हुई तो सता अस्त्र भी जोग से हर लेगा । यह और भी दुरा है ।

शूर्य०—कैसे ।

मातव्य०—जामदग्न्य तो जङ्गल का रहने वाला है, वह जो राम-बन्धु को मारे तो फिर वह वैसाही रहा । और जो राजपुत्र उसे बहुत प्रसन्न करके उत्साहशक्ति से उसे जीते तो सब उसे विजयी कहेंगे । उसी समय देवता लोग उसको अधिकार दे देंगे । क्योंकि असुरजीतनेवालों को अपमान के साथ सदा क्रोध जगा ही रहता है ।

मथि दसकंधर दान लही कीरति जग जोई ।

कृत्रियवास भरम कोन्ह हनि असन सोई ॥

श्री कृष्णजी को कुछ बताने का काम करता है,  
श्री कृष्णजी उसकी बातें सुनकर प्रसन्न होते हैं।

शुभः—श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

महाभारतः—महाभारत की बातें सुनो।

शुभः—श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

महाभारतः—महाभारत की बातें सुनो।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।

(श्री कृष्णजी की आज्ञा का पालन करे।)

इति ।

## दूसरा अध्याय

[ पहिला खण्ड—अवकाश राजमन्त्रियों श्रीमताजीके महलका एक कमरा ]

( परदे के पीछे ) श्री श्री विदेहराज के पास दालिया ; राम-  
चन्द्र कन्या के महल में सुखा बैठा है, उससे जाके कही ती ;

जीति त्रिलोक जो गर्वित होय यहैल समेत पहार उठावा ।

सै इशकंधर को अमिमान जो खेल सौं आवत सौंह तलावा ।

ऐसहुँ हँहय के धलवान नरैस को कोपि जो बारि गिरावा ।

काहे की डार से आहु हजार जो पैड के हूँठ समान बनावा ४\*

इसके भूमि के दाए इकीस ली कृत्रियोंत समूह सँहार  
 राह बतार की हुंयन के दिन शान्त करिके कौन एकार  
 भूमि हुंयन लहार लखेन के नारक के रिपुहँ को पढारा  
 ये भूमिके दुखदाय के, संनत जायत है करि कोप अपारा  
 ( जगदी से राय सीता और लखियाँ आती हैं )

राम—कैसे जगन्नाथ की बात है ।

महे देव, बिन गुरु शम्भु के शिष्य प्रधाना ।

भृगुहनुमति सीतानन्दके के राम निधाना ॥

आगत देखन मोहि, इहाँ लजा सब त्यागी ।

उम नन भोरी मोहि यह बस परजन लागी ॥

सीता—अरी लखियो यह क्या हुआ ।

लखियाँ—कुँवरजी भागे मन ।

राम—देखो इतने दलते मिलने की बाह बड़ी है। रोकना अच्छा नहीं लगता । किसी के उल्लाह को रोकना न चाहिये ।

लखियाँ—हाय परशुराम की तो हम लोगों ने सुना है कि लजने बार बार संसार में धूम के कृत्रियों का नाश करके अपना मोरथ पूरा किया था ।

राम—का एक काम से उनका महात्म काम हो सकता है नहीं नै तो

निज बाहुबल रज्जोति हैहयनाथ आदिहि जस लियो ।

पुनि भूमि वार इकीस महि यह लोक बिनकृत्रिय कियो ।

हयमेथ द्रोप लमेत महि निज गुरु कश्यप को दी ।

महि सिन्धु सन ता करन हैत हटाय जल अखन लई ॥

( परदे के पीछे )

तजि धीर दुख सन नास बस सब द्वारपाल निहारहीं ।

जेहि ओर चिनवत रक्त सुखत देह बदन विगारहीं ॥

परिवार हा ! हा ! करत सब चहुँ ओर सन जिज्ञात हैं ।

किये क्रोध भृगुपति हाय

सीतर जात हैं ॥

राम—प्यारे लो कहते हैं कि मैं तो शिवाचार ही पालना  
 लिखी हूँ। अब जो कसूर मैंने किया है, उसे क्षमा कर देना है, सबकुछ अपने  
 अंगों पर ही मैंने

(शिवजी ने अक्षय कर लयना है।)

कलिया—प्यारे लो मैंने तो तुम्हें पतिव्रत में अक्षय करवाया,  
 लक्ष्मणजी ने भी तुम्हें पतिव्रत में अक्षय करवाया, शिवजी ने भी तुम्हें  
 पतिव्रत में अक्षय करवाया है। तुम्हारे अंगों पर ही मैंने

सीता—आज्ञापूर्वक अपने अंगों पर ही मैंने अक्षय करवाया है।  
 (बसती है।)

[कुम्भार श्रावण—श्रीव्रतकी से अक्षय का इतरा कथना]

(अंगों पीछे राम सीता और कलिया आती हैं।)

कलिया—देखिए कुंवरजी, कुमारीजी अब इतने हुई आरक्षी हैं।

राम—(प्रेम और दया से लौट के, देखिये यह बहुत घमड़ाई  
 है आप लोग समझाइये।)

कलिया—सखी तुम तो सदा जब हमसे कहती थी कि  
 कुंवरजी सुर प्रसुर जोतने की सामर्थ रखते हैं, हम में तोम लोक  
 के संग्रह करनेवाले जब के लक्षण हैं, तो तुम्हारा मुंह खिल जाता  
 था। अब यह जब करने जाने हैं तो क्यों रोकती हो।

सीता—हाय, यह सब कलियों का नाश करने वाला परम-  
 राम है।

राम—प्यारी तुम खुश से लौट जाओ।

कुम्भार श्रावण शिवजी के जसु मंहु मधुक के मूल के रंगा।  
 साहस श्री प्रवराह से जनि करि प्रिया मुखरे सब अंगा।  
 लेखत लेख अलास लेख शोक कानकुज से उभरे उर संग।  
 झूठी ही प्राप्त सी भयो प्रिया तब हृष्ट नहीं शिवजी के तरंगा ॥  
 परदे क पीछे, ह ह वासयो अक्षय का लक्षका कर्हा है ५

सखियाँ—हाय हाय इन्हें का दुकारने हैं ।

राज—यह सखी अराजक कामों के करीबाले की शीत शान्त  
को देख कर रही हैं जैसे वादल की गरज होती है ।

सीता—का, काँ ( अनुप पकड़ के ) आर्यपुत्र जब तब  
बाधाओं से भाजाये, चार ल जाइये ।

सखियाँ—प्यारी सखी ये प्रेम से काज छोड़ डी ।

राम—(आप ही आग) लौह तो जीते लेता है (प्रकाश) तो हा  
धनुष छोड़ डीतः

( परदे के पीछे हं हं शान्त बालियों इत्यादि फिर पड़ता है )

सीता—तो तुम्हें हम जोर से पकड़ेंगी ।

राम—हाय हाय !

तप की बल की राखि क्रोध कीन्हें उत आवत ।

बीरसमागम हर्ष मोहि तेहि ओर बढ़ावत ।

रोकत है इत मोहि किये जेतन अनु मन्दा ।

हरिबन्धन लस लगत अंग सियपरसअनन्दा ॥

सखियाँ—अरे यह क्षत्रियों का राक्षस है परस्पराम, सूरज  
की जोति सा चमकता परसा लिए है, आग की लव की तरह  
ऊपर जरा लपेटे है, भारी टांगों को बढ़ा बढ़ा कर ऐसा चलता  
है मानों धरती धबड़ाई जाती है । यह तो आ पहुँचा ।

राम—त्रिभुवन के इक ओर यही मृगुपति मुनिराई ।

दरलत अमित महात्म तेज साहससमुद्गई ॥

खलत मनहुँ मिलि एक रूप तप तेज अखंडा ।

भये सिमिति एक पिंड बीररस मनहुँ प्रखंडा ॥

( अक्षरज से ) पावन वैद नैम व्रतधामा ।

कीन्हें जगत भयंकर कामा ॥

घोर मंजु गुन सूरति माहीं ।

वेद सरिस लसाहीं ॥



फिर इतिहास इतिहास पावा ।  
 प्रथम फिर निज कर धनुष उठावा ॥  
 नद बल करे खरित अब जोई ।  
 सुनी आज निज कानन लोई ॥

राम—अनिम तेज लपरासि जोग अस्मिमान जनावत ।  
 जग प्रसिद्ध करि सोद सो सुनि मोहि डेरत आवत  
 नये लिखे धनुषान जन सुनि काज करत को ।  
 करकत हे भो हाथ महन हित कपटि तरल को ॥  
 परन्तु आज्ञार का यहाँ कौन जान है ।

( परदे के दोखे ) अरे शानो, दशरथ का लड़का राम  
 राम—अजी हन यहाँ है । इधर आइए ।

( परशुराम आते हैं )

परशुः—बाह, राजकुमार, तू पूरा इन्वाकुबंशी है ॥  
 मैं नोहि हूँ दूत वधन हेत तू गर्व जनावत ।  
 सुनी इतिहास तेज योई मेरे बलि आवत ॥  
 निजहि मत्त गजपाठ सिंह आगे ज्योई डारै ।  
 जो गिरि से गजकुम्भ बज्र सम नखन बिदारै

सखियाँ—भगवान कुसल करै यह क्या कहते है ।

परशुः—( आप ही आप ) राजकुमार तो बड़ा सुन्दर  
 सिर हिलत पाँच शिखंड मंडल नवल सुग्रह शरीर है ।  
 आकार श्रियलच्छन सहज जनु लसत रुचिर गँभोर है  
 मनमोहनो यह रूप निरखत विश्वलोचनधर है ।

तेहि मारिये अब अवधि हा ! यह बोरनेम कडोर है ॥

काश ) सके नहीं जगबोर आजुनों जो धनु तोरी ।

ना के दूदत कोध बाँह मेरी अब मोरी ॥

खंडपरशु कहि लोक गहत जेहि शिवहि पूकारै ।

सो यह परशु फठोर कठ पर तब कसि मारै ॥

सखियाँ—हाय हाय सब की बिरह बिरह ।

राम—इसी नाम और वीरुष के डील में, महाभारती यह वही परशु है जिसे श्रीकृष्ण ने मरने के लिये भेजा था। मरियार समेत काचित्तव की कीमती पर प्रसन्न होकर दिया था।

सखियाँ—कुमारों की इतनी सुन्दरों के मत में मान क्या हुआ है पर, आपकी योजना की परशुपारती के बलिदान राजी की रीति के इतने की अरु भो है ।

योधा—( प्रकाश से परशुराम के शीर झूठकी है )

परशु०—( आपकी आप ) बड़ा प्रसन्न है, यहाँ नी नाम की कुतरी है । मरिमा और कीक केना पड़ा है । शीरमा और शीर, रता साथ ही है । ( प्रकाश ) राम, ही यह वही परशु है ।

सखियाँ—कुछ तो शीरे कुरी ।

परशु—अनंत सकल ब्रह्म प्रवहारा ।

जब जीर्थो मन सहित कुमार ।

हाय प्रसन्न ताय अर लीन्हा ।

तब यह परशु मोहिं गुरु दीन्हा ॥

राम—( आप ही आप ) इतने पर भी यह कहते हैं, बड़ा गर्व इनको है ( प्रकाश ) इसी से तो महाभारती तीनों लोक में तुम्हारी बीरता प्रसिद्ध है।

अहि सन कलिनाथ भगवाना ।

खंडपरशु कहि सब जग जाना ॥

लहि सोइ मारकरिपुहि हरई ।

परशुराम पदधी तुम पाई ॥

क्योंकि—उपस्थि है जनश्रि सन गुरु चंडपति भगवान है ।

बल तेज को अहि सकत कर्मन विदित सकल जहान है ॥

अहि दीनिह खात लहुद्र बेरी, जानि मानिथ कान को ।

ई स्थय लौकिक कैन गुन तब ब्रह्मतेजनिधान को ०



लखिये—कुर्वरजी ऐसी शानिं कह कह कर मना रहै हैं ।

परशु०—है राव सोना धाम, निज गुनन बस अमिराम ।

मैंरे दिखै सोहि देखि, सब प्रीति होति विलेखि ॥

कौर कुंर नो, पापपति किय जहँ दशन महारा ।

तेरो वैहि धर भारि कुमारा ॥

सो जर प्रतुल वीर लखि पुकारित ।

जावन बहौ कहीं खाँडी नित ॥

लखिये—कुमारी जो देखी तो कुर्वरजी कैसे तेजवारी हैं तुम  
जो यज्ञ उलहा हो समकता हो ।

सीता—( आँसु भर के खाँस लेती है )

राव—महात्मा जो भेंटजा तो जित के लिये आग आये हैं  
इयके तेरहु हैं ।

लखिये—कुर्वर जी का विनय औरता के साथ कैसा अच्छा  
बनता है ।

परशु०—( आग ही आग ) अरे यह लखिये का लड़का कैसा  
तुजस है । अपने और पराये गुणों को कैसा समकता है और उन  
का कैसा आश्चर्य करता है । विनय इतना बड़ा हुआ है कि उस  
के आगे अहंकार छिप सा गया है ।

यदपि न भौहि लौकिक नर मानत ।

मैंरे गुन अरिज सब जानत ॥

तउँ बोलत निधरक तजि वासा ।

यदपि विनय मन करत प्रकासा ॥

अहँ कौन यह बालक वीरा ।

गुन महिमासन रच्यो शरीरा ॥

बड़ा आश्चर्य है

त्रिभुवन अभय देव के काजा ।

यहि कौँ देह लखिये सब साजा ॥

दान विनय बल धर्म समेता ।

श्रेय सात्विक युन तेज निकेता ॥

यह जो, सखीसे, यह रूप लक्ष्मणका दिन प्रयास ।

वेदब्रह्मचर्य कर्मभ्रमों से मुक्त करवाया ।

सामर्थ्य के द्वारा सुख को लाजहूँ देती ।

नई प्रणव बहुत रागिणें तुम से काजल लेती ॥

( प्रकाश ) आर्य लोग राजकुमारी से जीवन ले चकरी ।

राम—, आर्य ही आर्य, डीक है ।

( परदे से पीछे )

जगज्ज ही यहि छिछि लले वेदि नमककुलनाथ ।

सतानन्द कुम्हार ललित अरु जीर्ण विज हाथ ।

लखियाँ—कुमारी की काकाजी लखरी अरिसे भीतर खरी ।

लीता—भगवती लंघान को देती है तुम्हारे हाथ लाहरी  
है । मंगल करता ।

( खियाँ बहल जाती है )

परशुराम—यह रंजित रूप लैहि रज्जु तिन ।

सतानन्द श्रीगिरज पुरोहित ।

दाहबलक्य लैहि मातु लिखाया ।

सो लैहि नृप कहै वेद पहाया ॥

अच्छा तो है पर लखिये होनेही से हमारी बेह इसे देख जगती है ।

( परदे से पीछे )

एक—तो अब क्या करना चाहिये ।

दूसरा—सहारना—

आयो जो साहुन विष यह सत्कार दिव्यवत कीजिय ।

पुनि धेड़पानी जानि यहि नहुंरुखं भोजन होजिय ॥

जो और मानि समाहसन तिन आत लैहि लेखन लखै ।

• तो जानि दंडनयोग यहि कोदरुखं विज सजसर लखै ॥

राम—यह आर्य लोके कबला की बला रहे है ।

परशुः—बुद्ध को नहीं

मूर्खों को ही जिन्हें भी जगत्तुल्य उपासक मानते ।

मूर्खों को ही जिन्हें भी मरण प्राणवत् मानते ।

मूर्खों को ही जिन्हें भी मरण विचारते ।

मूर्खों को ही जिन्हें भी मूर्खों को ही बुद्ध मानते ॥

राम—जब तक वे जिन्हें भी मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

परशुः—मूर्खों को ही मूर्ख मानते ।

मूर्खों को ही जिन्हें भी मूर्खों को ही मूर्खों मानते ।

मूर्खों को ही जिन्हें भी मूर्खों को ही मूर्खों मानते ।

राम—मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

परशुः—मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं । मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं । मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं । मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

सब जानें यही लोक मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

परशुराम जिन्हें भी मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ॥

॥ और सुन रे मूर्ख

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ॥

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ॥

राम—निर्दोषों को ही मारना तो पुरुष का धर्म है उसमें कौन डींग मारने की बात है ।

परशुराम—मूर्खों को ही मूर्खों को ही मूर्खों मानते हैं ।

कन महाराज अब भी जि मी है जाली यह नोका ।

कुरि प्रहार रिनु प्रथम नरेक करिहें जिन जीका ।

मैंने एकहि वन परतु जगि करु मति है ।

विगत सीमा कहे करि नरह वपुरे का कनि है ।

( जनक और शतानन्द प्रार्थि है )

जनक और शता०—देवा राजपुत्र करला न, देखहुक ही जायो ।

राम—हम अब तो हयै इन मयी की आज्ञा पर अतन लोग ।

परशु०—कहिसे अगिरतः ही तुलन से हो ।

शता०—विशेष कर तुम्हारे दर्शन से । और ।

आये जो पाहन पूजनयोग है वैदिये नाथ करे सतकार ।

परशु०—पुरोहित जी, वेदपाठी, धरुकरलेवाला, यागवल्कर का शिष्य बड़ा भलावातुस सुना जाता है । पर हम अतिथि सतकार नहीं मांगते, हम पाहुने नहीं ।

शता०—वैदि कुमारी के मन्दिर में तुम अष्ट कियो गृहधर्म हमारा ।

परशु०—हम तो वनवासी ब्राह्मण हैं हम महागजाओं के घर की रीति क्या जानें ।

राम—( आपही आप ) जिसने संसार को दान कर दिया उसे राजाओं से भयं जनाना कैसा प्रच्छा लगता है ।

जनक—आकत है हमरे केहि कारन छेड़त ही रघुवंशकुमारा ।

( कंचुको आना है )

कंचुको—कंकन छोरन रानि मिली वर भोजिये नाथ न लाइय नारा ।

जनक और शता०—भैया रामचन्द्र तुम्हें तुम्हारी सास तुलः रही है, जाओ ।

राम—महात्मा परशुराम जी देखिये बड़ों की आज्ञा यह है ।

परशु०—कुछ शोष नहीं है । लोकरीति कर दी । जाओ सासुओं में ही जाओ । पर वनवासी नगरों में बहुत बेर तक नहीं ठहरते इस से हम जाना चाहते हैं बिजमय न करना

राम—सुभद्रा बच्यो ।

( सुभद्रा आता है )

सुभद्रा—विश्वामित्र और विश्वामित्र की आप लोगों को परशुराम  
को समेत बुला रहे हैं ।

और सब—कौनो महात्मा कहां है ?

सुभद्रा—महाराज दशरथ के द्वार में ।

राम—वहाँ को आका ले मुझे जाना पड़ता है ।

सब—बसो वही जगती ( सब बाहर जाती है )

इति ।

## तीसरा अङ्क

[ स्थान—जनकपुर महाराज दशरथ का डेरा ]

(विश्वामित्र, विश्वामित्र, परशुराम, जनक और शतानन्द आते हैं)  
बसि० और विश्वामि०—परशुराम,

इस सौ पूर्व सौ शत्रु कसाह प्रसिद्ध तु इन्द्रके मित्र पियारे ।  
राजत जो यह लोक के बीच सुरेश तमान अकासमें सारे ।  
बाने रहे हम से जब जासु तु विश्व में है मनु सौ यह धरि ।  
बृह नरेश सौ पुत्र के मोह सौ मानी प्रथे कर जोरि तुम्हारे ॥  
जो इस अर्थ अगड़े को छोड़ो ।

रखा जाय मधुपर्क और धी में पार्क अन्न ।

सौतो साथे सौतिअर कर हम सबन प्रसन्न ॥

परशु०—जो आप लोग कहते हैं उस में मुझे इतना ही कहना  
है कि लम्बा करने में बार न जाता जो राम ऐसा धीर न होता ।  
आप देखें तो,

हैं अद्यपि बालक राम, हैं अगत्रिदित कर्म दिखाइके ।

पुनि परशु धर कबसीन स्वाध्यायी हानि पर सन पार्क ॥

तह जाति विध, को मुह प मज्जन, सब जान न क्यों कही :

कहिं गुन यह कहूँ बीर कोड परहाथ सन अभिभव सही ।

पौर । जो जन सब हंडुत फिरत जानत है सब देव :

मिहे जो तेहि संभोग सौं कहूँ निन्दा को लेस ॥

कहत फिरत एक एकलौं मोय सकल संभार ।

• एकै न कोपिहु यतनसौं तेहि कर लाकरतार ॥

बलिहू—सैरा अब क्या। जनममर इत आधुधपिशाचिका को

निधे किरीली । परशुराम की तुम ओखिब हो, तुम को तो पवित्र

बाग पर बनना चाहिये । तुम को बनवाती नपकी हो तुम को

चाहिये कि मैसा कवला और देसी ही जो भावना है बनको जान

डाली जिन से बिल मुह हो बाघ और मकासमान हो, शोक से

रहित हो मुख पावे और परशु को रज हो, जब बिल मुह हो

जाता है तो अतन्मया नाम अतन्मयीति का जान ही जाता है जिन

से फिर किलो प्रकार का विरयोस बिल में नहीं जाता और जिन

से अतन्मकरत में पूरी सातथ्ये प्राजाती है। ब्राह्मण को यही

कहना चाहिये । इसी से बाप और मायु के परे हो जाता है । तुम

को अब नपसा भी कर रहे हो । देखो तो,

बसा अदिन को लकन, सुधाजित वृद्धा राजा ।

जैमपाद नरनाह सहित निज संजि अनाजा ।

जनक करत नित यह परे उपनिषद् सार ।

बाबक है यहि नामय राम के बाज तुम्हारे ॥

परशु०—शोक है । परशु,

सैसे देखीं जायके विन रिबुसूल उखारि ।

सुक देव अलोकपति मुदतिय शैजकुमारि ॥

विशवा०—जो तुम को मुह का इतना विचार है जो जो हम

कहते हैं, जो जो जाने, क्योंकि,

भृगु बलिष्ठ श्री अंगिरस से विधि सब अदिपि तीन ।

तुम भृगुवंशि बलिष्ठ यह यह अंगिरस प्रवीन ।

परशु०—करिहौं प्रायश्चित्त में करि अपमान तुम्हार ।

तैं न धर्म निज छाडिहौं गहि निज हाथ हथियार ॥

और भी— मुक्तिहु सन प्रिय जन जन जाना ।

राखव निज जन कर नित माना ॥

तुम सब बन्धु, वाँह यह भोरी ।

जहाँ फुंकरी समर सँहँ डोरी ॥

विशवा०—( आरही आय )

पद पद महिमा करि प्रगट परशुराम की बात ।

खिन उपजावत आखरज हिय नित वेधत तात ॥

परशु०—सुने महात्मा कौशिकजी,

गुरु वसिष्ठ नित ब्रह्म में रहै लगाये ध्यान ।

बीरन के कुल धर्म में तुमही गुरु प्रधान ॥

भृगु के उत्तम वंश में लहो जन्म जग जोय ।

सो कर लोन्हो शस्त्र तेहि इहाँ उचित का होय ॥

वसिष्ठ—( आप ही आप )

है स्वभाव सन यह असुर, गुन सन यदपि महान ।

महिमा लहि मर्याद तजि, जगत करै अभिमान ॥

विशवा०—भैया हम यह कहते हैं ।

तुम एक के अपराध से तजि धीरमति खित, कोपि कै ।

खिन काज कत्रिय जाति मारी अर्थ ही प्रण रोपि कै ॥

द्विज बोज हू के कत्रि इकइस बार जग सब छानि कै ।

संहारि रोक्वो क्रोध पुनि मुनि उद्यवन कहनो मानि कै ॥

परशु०—पिता के अध से जो कत्रियों के मारने का बड़ा काम  
मिला था उले तो मैं छोड़ बैठा इस में क्या कहना है ।

वज्रखंड के सरिस परशु यद्यपि अति प्यारा ।

बन्धो कत्रवध छाडि ईधने

रा ॥

इह खरिस कोण्ड विना अति नीरस वाता ।  
 आनि खरिस खरिदुहे भयो सो खरि तपाना ॥  
 बहुदिन अति यानि उरवत जादिक सुनि वानी ।  
 लको परशु को प्रथम शीव को आनि दुवानी ॥  
 फिरि वन खरिस विनाकि वरत कृत्रियुत वाडा ।  
 उमरि, शत्रु को वन है बहुदिनि अनु वाडा ॥

राम का खिर काहने का एक और भी कारण है। अब तो,

यह बालक कोहैति संवत्सरन ।  
 कादि तापु खिर में अही वन ॥  
 रहै अर्धे रघुनिमिशुलराजा ।  
 फिरि न काहु कर होइ प्रकाजा ॥

शताः—जिस की इतनी सामर्थ्य है जो हमारे प्यारे यजमान राजपि विदेहराज की परकाई भी लांब तकै। दामाद को सूना तो दूसरी बात है,

यहि घर के आचरन नित रहे अर्धहितलागि ।  
 बहुदिन से तहँ रहन ज्यों गार्हापत्य की अगि ॥  
 सो बैरो के हाथ लों जाँ पावै अपमान ।  
 तौ हम धिक् ब्रह्मपय धिक् धिक् अंगिर सन्तान ॥

विश्वाः—वाह, भैया गौतम, वाह, राजा खिरध्वज तुम ऐसा पुरोहित पाके धन्य है।

निबन्ध होइ विमसै नहीं डिगै राज तहिँ तासु ।  
 निज तप बल रजा करत तुम पंडित द्विज जासु ॥

परशु०—अजी गौतम तुम्हारे ऐसे कितने क्षत्रियों के पुरोहित ब्रह्मतेज से कूड़े थे। पर संसारिक तेज तो अलौकिक तेज के सामने बूझ से जाते हैं।

शता०—(कोध से) अरे बैल, निरपराध क्षत्रियों का वंश नास करनेवाले, महापापी बुरा चेष्टावाले नीच काम करनेवाले,



वेदीबिह्वल चलनवाले आसुक पतित, धर्म छोड़े, तू हम के  
नी खिलाती देता है। क्यों रे तू ही अपने को आहार कहता है  
माह रे आहार का काम :

काइव मातलील, बर्धन को पुत्रि कांठियो :

यज्ञ करत अघनील, इनय अन्नहस्ता खरिल ॥

परशु—क्यों रे जस बनाते वाले दुष्ट छत्रियों के पुरोहित,  
क्यों रे अहिज्या के पूत हम नील कर्मों हैं ?

शताः—अरे नील पाजो मृतकुल के कलंक

जमा करे गुरु और नृप कृपा अधिक तिन भाहिं ।

शतानन्द यहि घवन को जमा करे अब नाहिं ॥

( इतना कहकर कर्मजल ले रागी हाथ में लेता है )

बसिष्ठ—अरे कोई है भाई, जनाओ, जनाओ। अरे यह तो पहले  
से हींकी आग की ताईं क्रोध की आग से शतानन्द का महतीज  
घण्ट हो रहा है ।

शताः—( जल्दी से शाप के लिये पानी लेके ) देखीं आपनीम

तुमहिं बधन चाहत यह पापी ।

तैहि वैगहि करि क्रोध खरापी ॥

करौ वायु संग अनहुं हुलाना ।

खल रुखहि अब छार समाना ॥

( परदे के पीछे ) यह आप का करते हैं, कृपा कीजिये ।  
आप की तपस्या का प्रबल तेज ऐसे पर नहीं पड़ना चाहिये जो  
आप के घर आया है ।

सगा बन्धु बामहन गुनी आयो है तब गेह ।

ताहि बिनासन खहत तुम कौन धर्म कहु एह ?

छाड़े जो मर्याद निज लहे शास्त्र महीं बोध ।

छत्री ताहि सुधारिहै, आप करिय जनि क्रोध ॥

बसिष्ठ ( शाप का पानी गिरा कर ) भैया शतानन्द देखी

तो तुम्हारे समथी महाराज दशरथ का कहते हैं, और वह भी तो तुम्हारा ।

इसके संग्रह काज तो हज केन्द्र जलनाका ।  
 करो शांति जाग्रति संग जल वैश्वविद्याका ।  
 सामवेद के संग द्वाद जगत के काजा ।  
 वामदेव मुनि जौं सहित सब शिष्य समाजा ॥

( गले जगा के बाहर निकाल देना है )

परशु—देखो कृत्रियों का पाला बहना कैसा परजना है ।  
 यह क्या करेगा । अजी है कौशलराज और विदेहराज के पाले  
 बाम्हन और सातों कुलपर्वत और शीबों पर रखनेवाले कृत्री,  
 हमारी बात सुनी ।

तपका के हथियार का जोहि काहुहि मर होइ ।  
 समुझै निज निज वैरी प्रबल यहि छिन भो कहौ सोइ ॥  
 बिन सौरध्वज करि जगत बिन दशरथ औ राम ।  
 बौड कुल के सब लोग हनि सहै परशु विश्राम ॥

( परदेके पीछे ) परशुराम, परशुराम तुम बहुत बढ़ते जाते हो ।  
 परशुराम—अरे यह तो हमको बढ़ने का जनक बिगड़ रहे हैं ।

( जनक आना है )

जनक—नमस्त सकल निज शत्रुपक्ष शीथिलन अत्ये ।  
 परमब्रह्म की ज्योति भांहि नित ध्यान लगाये ॥  
 दबो गृहस्थी माहिं जु कृत्रिय नेज प्रबण्डा ।  
 प्रगत होय सो उठवाधत कर सब कोदंडा ॥

परशु—अजी जनक,

तुम धर्मिक अति बूढ़ लहे परमारथ जाना ।  
 वेद पढ़ाये तोहि सर्वकर शिष्य अध्याना ॥  
 जोम जानि यहि हेत करौ आदर मैं तोरा ।  
 तू केहि हित भय कांठि कहत अत्र अघन कठोरा ?

## प्राचीन न एक मखिमाल

जनक—तुम्हारा बिनय जाय जाइ मैं । बजो लुकी  
उम्मी भुपुभुविपल का यहि तयसी पुनि जानि ।  
सही बैर लीं रिपुहु कीं हम अति अनुचित बानि  
तुन समान हम लखन गनि करत जाल अमान ।  
उटे अनुष यहि दुष्ट पर अद उपाय नहि आन ॥

परशु०—( रोप ले हँस के ) क्या कहा तुमने ! क्या  
य ! बड़ा अस्वराज है । ( परशु समहाल कर )

इकत रिपुस्त्रिजान अत्यो यह परशु कराला ।  
जो लखि कनिय लौह हँसत जनु भड़कत ज्वाल  
याज्ञवल्क्य के आदर सेा मोहि जगत निहारी ।  
वृथा फूलि यह डीकर कनिय गरजत भारी ॥

जनक—तो कहना क्या है ।

ईति सरिस द्वय कीटि वज्रत गरजत अति घोरा  
लसै जोम सो डोर खाप सो यहि बन मोरा ।  
मसन काज संसार काल जब बदन पसारै ।  
लीलन को यह दुष्ट आज नाकी छवि धारै ॥

( धनुष उठ

( परदे के पीछे )

करै जु सहस गाय नित दाना ।  
शुबै न सर तव हाथ पुराना ॥  
उचित न द्विज पर क्रोध तुम्हारा ।  
जनि उदाइये भूप हृदयारा ॥

जनक—भाई महाराज दशरथ,

नहिं अकाज हम कहै जी कहई ।  
को द्विज के कटु वचन न सहई ॥  
बरसहि वचन अमंगल पैसै ।  
बरसा रहत सहे सो कैसे ०

परशु०—अरे पाजी जो बूढ़ हू हतो बरजा कहता है, बड़ा  
के रह ।

श्रीलि भंडार करेन श्री के कहू अर्थात् सर्वे सहे काहि गिराये ।  
श्रीरि की क्षाती भुराजे वारे वहाँ कंड जी बान्त परेत मिलाने ।  
काटिके सीम लगाय के रक्त को फेव सेः नपु करात बिछार्ये ।  
काटे हुडार अटो ननो महु बोटी ली बोटी मेरी बिलगार्ये ॥

( दशरथ आते है )

दशरथ—परशुराम मुनी जी ।

जैसे इहाँ जनक नृप धोरा ।

तैसे नहिं तुम धरत शरीरा ॥

तुम अथ वृथा राखि जानि करहु ।

हम सब कर श्रीरज किमि हरहु ॥

परशु०—तो फिर ?

दशरथ—हम छमा न करेंगे ।

परशु०—तुम तो हमें और मालिक की नाईं छुड़क रहे हो ।  
मूल रूप कि जमदग्नि के लड़के परशुराम जनम से स्वतन्त्र हैं ।

दशरथ—इसी से तो छमा नहीं कर सकते ।

तजि मयाद करै जो कर्मा ।

तिनहिं सुधारव कृत्रियधर्मा ॥

तुम मयाद लाधि पद् धारे ।

हम कृत्रिय तव दंडन हारे ॥

होहु शान्त ननु एक छन माहीं ।

मिलहि दंड तोहि संशय नाहीं ॥

कहं जप तप ब्राह्मन व्यवहारा ।

कहं यह कृत्रिय जोग हथ्यारा ॥

परशु०—( हंस के ) बहुत दिन पर परशुराम के भाग खुले जो  
तुम कृप्री उन को सुधारनेवाले मिले ।

## प्राचीन नाटक मशियाला

दशरथ—अरे इससे कुछ समझें हैं।

यह हीय बूढ़ा अज्ञान के समझें हम मन में रहें ।  
जो करत बिना शिक्षा कसु, उपदेश तो सुखान अहैं  
जो करत बिना समझें अप सब जानि बुक्ति अकारु के  
तेहि इह देह न भूय, हीय बिनाल राजासमान की ।

विश्वाम्—महाबाजने बहुत ठीक कहा ।

मैं न हीय तोहि हीय कसु अप समझेंहा ।  
पर वसिष्ठ के पाप नासु इष्टन बिधि पहल ॥  
तहें सुद्ध मर जान करु किनि करै अकारु ।  
मैं करिहैं जो पाप तहें कैसे तेहि राजा ॥

गुं—अरे ज्ञान वेद कमान कहें मेरे गुरु त्रिपुरारि हैं ।  
मैं कीन्ह आशेष नासु तेहि कोनि छत्र बंस सुधारि हैं  
हैं बूढ़ आरु जीग कहिय वसिष्ठ कहें यहि सब कहा  
को जीव जग महें जो तरिस यहि काल के कबहुँक न

यलि०—भूगु को संतान से हम हारे, यह बड़े आनन  
हैं परन्तु ।

हमरेहि पावन जीग जो हम कहें परम पियार ।

हमरे ही घर में नमत अत्र देखित आहार ॥

जनक, दश, और विश्वाम्—अनार्य मर्याद नहीं मानता ।

गुरु समातन जगत के राखै तासु न मान ।

हम अत्र तोहि सुधारि हैं तुह गयन्द समान ।

परशु०—ए सब तो मुझे मानते ही नहीं

भइकी परशु पाह अपमाना ।

यहि अबसर मैं क्रोध समाना ॥

यहि जग माहि महीपति जेते ।

रहैं सकल दशरथ बल तेते ॥

मैं अच्छा है,

बाहल्यही जल की यह कौरी,  
 कत्रिय नाम हूँ हिय कौरी ।  
 करी आज कत्रियसुखदहन ।  
 कृत्रिमकालवासव पर जानन ।

सुनि सुनि की बात सुनुरथ नन सुनू मेरी ।  
 श्वेतजल कील सुमान हिरे लहि बस्ये कौरी ।  
 हाँ भङ्गकम अपमान पद्य ज्यो बाहुन नशाला ।  
 प्रलय काल जब हस्त बलत उद वासु कराला ।

वसिष्ठ—कैसे शोक की बात है ।

यद्यपि अहं बन्धु यह मेरा ।  
 बाहुत करन काज प्रति शौरा ।  
 बड़े ब्रह्म सद्व्यस्य पुनि त्वाहं ।  
 केहि कारण बधजोय न होई ।  
 जो मैं यहि करे क्रोध निहारा ।  
 हेहँ भृगुसुतसंतति द्वारा ।

विश्वाः—अरे परशुराम तू समझना है कि इन के पानी में  
 ब्रह्मबल नहीं है वैसे ही इनके शस्त्र की शक्ति भी नहीं है ।

निन्दित कत्रि औ बिप्र समा कत्रिके को अत्रिष्ट हिए मई कानी ।  
 वेने हैं दुःख हमें अत्र लीं नहि बोते हैं जना नलीब को जानी ।  
 हाप को आगि बरी बहिने पर शपत के उठवावत पानी ।  
 हाथ लों बाँधे दुहावत है धनु वेनि खेताय के बान पुरानी ।

परशु०—सुनो जो विश्वामित्र,

तुम्हरे ब्रह्मतेज जो भारी ।  
 होहु जाति बस के धनुधारी ।  
 निज तप प्रबल दहौं तप तोरा ।  
 भंजै धनुहि परशु यह मेरा ।  
 ( परदे के पीछे )

ने महामा कौशिकमुनि का चेना राम हाथ जोड़ के विना  
नहीं

नाथो, बरानुख जीति जो फूलो हैइथईस ।

जीत्यो पदमुख, ताहि में जीतो रेहु मसीक ॥

दशरथ—मैया रामचन्द्र जागदे अब क्या होगा ।

जनक—जो अर्घ्या बात है उसे होने दीजिये । रामचन्द्र की  
ही ।

मङ्गलतन को सर्व यह हरिहै तेजनिधान ।

मुनि वसिष्ठ आदिक सकल यहि के अहै प्रमान ॥

—निज प्रजापालनधर्मरत जग माहिँ विदित सदा रहे ।

कारे ब्रह्म वेदविधान नित जो पुरख रबिकुलनृप लहे ॥

सोइ ब्रह्म ने श्रीराम आजहि जन्म आयन जनु लह्यो ।

सर्वत्र जानत ब्रह्म तासु प्रभाव जो यहि विधि कह्यो ॥

परशु—माओ जी राजकुमार परशुराम को जीतो (मुसकाके)

त लकोनो । रेणुका का लड़का तुम्हारा काल है, बड़ा कठिन  
का जीतना है । अब तो

फटत अत्रियन सीस चलत लोहू की धारा ।

भड़कत शर की प्रबल आगि लव है छनकारा ॥

बजत डोरि धुनि गूँजि कुंज सम लहि ब्रह्मंडा ।

कालघोरमुखकाज करै यह मम कोवंडा ॥

( सब बाहर जाते हैं )

## चौथे अङ्क का विष्कम्भक

[ स्थान—कच्चा, माल्यवान का घर ]

( परदे के पीछे )

नो जी सुनो देवताओ मंगल मनाओ, मनाओ

जय कुशाश्व के शिष्यवर विश्वामित्र सुनील :  
जय जय दिव्यतिबल के ज्ञानि अश्वथ के ईस ॥  
अभय करत जो जगत को करि महारतिमद मन्द :  
सरन देत अलोका कहै जयनि नोहोतवन्द ॥

( घबड़ाप हुए शूर्पणखा और माल्यवान आते हैं )

माल्य०—बेटी तुमने देखा देवताओं में कितना एका है कि इन्द्र आदि आप से आप बन्दीजन बने जाते हैं।

शूर्प०—जो आप समझते हैं उससे और कुछ थोड़ा ही हो सकता है। मेरा तो जो कांप रहा है, अब क्या करना चाहिये।

माल्य०—करना यह है कि वह जो भरत की मा रानी कैकेई है उसे राजा ने बहुत दिन हुये दो वर देने का कहा था। आज कल दशरथ की कुशल छेम पूछने उसकी चैरी मन्थरा अयोध्या से मिथिला भेजी गई है, वह मिथिला के पास पहुँची है। उसके शरीर में तू समा जा और ऐसा कर ( कान में कहता है )।

शूर्प०—तुम्हें विश्वास है कि वह अभाग्य मान जायगा।

माल्य०—यह भी कहीं हो सकता है कि इत्थाकु के कुल में कोई भलमंसी छोड़ दे, न कि राम जो ऐसा वैरी का जय करने वाला है।

शूर्प०—तब क्या होगा।

माल्य०—तब इस योगाचारन्याय से राम को दूर खींच कर राजसों के पड़ोस में और विन्ध्याचल के खोहों में जहाँ इन का कुछ जानाहुआ नहीं है, हम लोग इन पर सहज ही बढ़ाई कर लेंगे। दण्डकवन के मुनियों को विराध दनु आदि राजस सताने लगेंगे, तब यह हो सकेगा कि राम के साथ राजसी बड़ाई तो कुछ रहैगी नहीं, उस समय छलकर राम का उत्साह मन्द कर देंगे। यह तो तुम जानती ही हो कि रावण ने जो सीता को अपनी